EDU Journal of International Affairs and Research (EJIAR), ISSN: 2583-9993
Volume 3, Issue 4, October-December, 2024, Available at: https://edupublications.com/index.php/ejiar

अजमेर और पुष्कर हिन्दू - मुस्लिम धार्मिक सह-अस्तित्व का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ बीता शर्मा[1], कैलाश गढ़वाल[2]

[1]सहायक आचार्य इतिहास विभाग श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान
[2]शोधार्थी इतिहास विभाग श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान

सारांश

अजमेर और पुष्कर भारत के उन ऐतिहासिक नगरों में सम्मिलित हैं जहाँ हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक सह-अस्तित्व की सशक्त परंपरा देखने को मिलती है। यह शोध पत्र इन दोनों स्थलों की ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए इस बात की पड़ताल करता है कि किस प्रकार सूफी, संत और तीर्थ परंपराएँ पारस्परिक सहिष्णुता, संवाद और सहयोग को पोषित करती रही हैं। अजमेर स्थित ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह और पुष्कर में स्थित ब्रह्मा मंदिर न केवल अपने-अपने धर्मों के लिए पवित्र स्थल हैं, बल्कि वे इस बात का भी प्रतीक हैं कि विभिन्न धार्मिक समुदाय किस प्रकार एक-दूसरे के साथ शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व में रह सकते हैं। यह अध्ययन लोक परंपराओं, तीर्थ यात्राओं, मेलों और सांस्कृतिक अनुष्ठानों में परिलक्षित धार्मिक संवाद को उजागर करता है। शोध यह भी दिखाता है कि किस प्रकार ऐतिहासिक कालखंडों में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक शक्तियाँ सह-अस्तित्व को दिशा देती रही हैं। वर्तमान सांप्रदायिक तनावों की पृष्ठभूमि में, यह ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य धार्मिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक बहुलता के महत्व को रेखांकित करता है। यह लेख न केवल अतीत को समझने का प्रयास है, बल्कि समकालीन भारत के लिए भी एक संभावित सामाजिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: अजमेर, पुष्कर, सह-अस्तित्व, हिन्दू-मुस्लिम संबंध, सूफी परंपरा, धार्मिक संवाद, सांस्कृतिक सहिष्णुता

प्रस्तावना

राजस्थान, जो अपने स्थापत्य वैभव, राजवंशीय इतिहास और जीवंत लोक संस्कृति के लिए विश्वविख्यात है, केवल मरुभूमि और किलों की भूमि नहीं है, बल्कि यह विविध धार्मिक आस्थाओं, पंथों और परंपराओं के सह-अस्तित्व की अद्भुत मिसाल भी प्रस्तुत करता है। इस राज्य के धार्मिक परिदृश्य में हिन्दू, मुस्लिम, जैन, सिख और अन्य समुदायों की उपस्थिति न केवल भौगोलिक रूप से स्पष्ट है, बल्कि लोक व्यवहार, त्योहारों, तीर्थ यात्राओं और सांस्कृतिक आदान-प्रदान में भी गहराई से व्याप्त है। इसी बहुलता का उत्कृष्ट उदाहरण अजमेर

और पुष्कर जैसे नगर हैं, जहाँ सदियों से विभिन्न धार्मिक विश्वासों ने न केवल सह-अस्तित्व का अभ्यास किया है, बल्कि एक दूसरे को संस्कार और संवेदना का आधार भी प्रदान किया है।

अजमेर, सूफी संत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के कारण मुस्लिम श्रद्धालुओं के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल है, वहीं कुछ ही किलोमीटर दूर स्थित पुष्कर, ब्रह्मा जी के एकमात्र मंदिर के कारण हिन्दू आस्था का प्राचीन केंद्र रहा है। इन दोनों स्थलों का सामीप्य, और वहाँ होने वाली धार्मिक गतिविधियों में सभी वर्गों की सहभागिता, सह-अस्तित्व को केवल वैचारिक अवधारणा नहीं, बल्कि जीते-जागते यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करती है। पुष्कर में प्रत्येक वर्ष आयोजित कार्तिक पूर्णिमा मेले में जहाँ लाखों हिन्दू तीर्थयात्री सरोवर में स्नान कर पुण्य अर्जित करते हैं, वहीं अनेक मुस्लिम व्यापारी, कलाकार और पर्यटक भी इस आयोजन में भाग लेते हैं। दूसरी ओर, ख्वाजा साहब की दरगाह पर आयोजित उर्स में हर धर्म के लोग चादर चढ़ाने, कव्वालियाँ सुनने और सूफी परंपरा से जुड़ने के लिए आते हैं। वर्ष 2023 के उर्स महोत्सव में भाग लेने वाले 18 लाख से अधिक श्रद्धालुओं में बड़ी संख्या हिन्दू तीर्थयात्रियों की भी थी, जिन्होंने ख्वाजा साहब की मज़ार पर फूल और चादर चढ़ाई और देश में अमन-चैन की दुआ माँगी।

धार्मिक सह-अस्तित्व की संकल्पना, जो प्राचीन भारत की सांस्कृतिक आत्मा रही है, आज के समय में और अधिक प्रासंगिक हो गई है जब धार्मिक असहिष्णुता और ध्रुवीकरण की प्रवृत्तियाँ वैश्विक स्तर पर बढ़ रही हैं। इस पृष्ठभूमि में, अजमेर और पुष्कर जैसे स्थलों का ऐतिहासिक अध्ययन केवल अतीत को जानने का प्रयास नहीं है, बल्कि वर्तमान के लिए सामाजिक मार्गदर्शन और भविष्य के लिए सांस्कृतिक दिशा की तलाश भी है। यह अध्ययन दर्शाता है कि सह-अस्तित्व केवल सहनशीलता पर आधारित नहीं, बल्कि गहरे संवाद, साझी परंपराओं और साझा जीवन-प्रणालियों से पोषित होता है। उदाहरणस्वरूप, पुष्कर के स्थानीय लोकगीतों में ख्वाजा साहब का उल्लेख मिलता है, और अजमेर के सूफी फकीरों द्वारा रचित कई क़व्वालियों में पुष्कर के घाटों का संकेत प्रतीकात्मक रूप में किया गया है। यह मिश्रण सांस्कृतिक समन्वय का गहरा प्रमाण है।

इस शोध का उद्देश्य अजमेर और पुष्कर में हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक सह-अस्तित्व की ऐतिहासिक परंपराओं का विश्लेषण करना है। शोध यह जानने का प्रयास करेगा कि किन सामाजिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक कारकों ने इस सह-अस्तित्व को पोषित किया और वर्तमान संदर्भ में इन स्थलों से हमें क्या प्रेरणा मिल सकती है। शोध के प्रमुख प्रश्न हैं: (1) किन ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तित्वों ने इन दोनों नगरों में धार्मिक सह-अस्तित्व की भावना को विकसित किया? (2) किस प्रकार से लोक परंपराएँ, तीर्थ यात्राएँ और सांस्कृतिक अनुष्ठान धार्मिक संवाद को सम्भव बनाते हैं? (3) आज के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य में इन स्थलों की प्रासंगिकता क्या है? यह शोध न केवल एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में कार्य करेगा, बल्कि यह सांप्रदायिक सौहार्द की संभावनाओं और सांस्कृतिक समरसता की ज़रूरत को रेखांकित करने का प्रयास भी करेगा। विशेष रूप से वर्तमान समय में, जब धार्मिक पहचान को बहुधा टकराव के संदर्भ में देखा जाता है, ऐसे ऐतिहासिक सह-अस्तित्व के स्थल सामूहिक स्मृति में संतुलन और संवाद की पुनर्स्थापना कर सकते हैं।

अजमेर और पुष्कर: ऐतिहासिक अवलोकन

अजमेर और पुष्कर, भौगोलिक रूप से निकट होने के साथ-साथ ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध स्थल हैं। इन दोनों नगरों ने भारतीय उपमहाद्वीप में न केवल धार्मिक जीवन को दिशा दी है, बल्कि सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक समन्वय और राजनीतिक-सांस्कृतिक संवाद के भी सजीव केंद्र रहे हैं।

अजमेर का इतिहास विशेष रूप से सूफी परंपरा से जुड़ा हुआ है, जिसका प्रतीक हैं ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती (1141–1236 ई.)। उनका आगमन 12वीं सदी के उत्तरार्ध में लाहौर होते हुए अजमेर में हुआ। यह वह काल था जब उत्तरी भारत में ग़ोरी और खिलजी सत्ताओं का विस्तार हो रहा था और स्थानीय जनता अनेक सामाजिक और राजनीतिक अस्थिरताओं से जूझ रही थी। ख्वाजा साहब ने चिश्ती सूफी सिलसिले की शिक्षा के माध्यम से प्रेम, करुणा और समर्पण का संदेश दिया, जिसमें सभी धर्मों और जातियों के लोगों के लिए समभाव निहित था। उन्होंने किसी प्रकार की सत्ता या दरबारी संबंध से दूरी रखते हुए, जनमानस के बीच रहकर आध्यात्मिक चेतना का कार्य किया। उनके अनुयायी उन्हें 'ग़रीब नवाज़' कहते हैं, अर्थात् 'ग़रीबों के सहायक', जो उनके सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। उनकी दरगाह, जो आज भी लाखों श्रद्धालुओं को आकर्षित करती है, सह-अस्तित्व और धर्मनिरपेक्षता का जीवंत उदाहरण है।

दूसरी ओर, पुष्कर का उल्लेख ऋग्वेद तथा ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण और महाभारत जैसे ग्रंथों में आता है, जहाँ इसे ब्रह्मा जी का तपोस्थल और सृष्टि का मूल केंद्र बताया गया है। यहाँ स्थित ब्रह्मा मंदिर विश्व का एकमात्र प्रमुख मंदिर है जो इस सृष्टिकर्ता देवता को समर्पित है। पुष्कर सरोवर, जिसे स्वयं ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न माना गया है, हिन्दू धर्म में तीर्थराज की संज्ञा प्राप्त करता है। यहाँ कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर लाखों श्रद्धालु स्नान करने आते हैं और विशाल पशु मेले का आयोजन भी होता है, जो धार्मिक आस्था और लोकजीवन के समन्वय का परिचायक है।

मध्यकालीन भारत में, जब हिन्दू-मुस्लिम शासक वर्गों के बीच संघर्ष और सहयोग दोनों के दौर चले, अजमेर और पुष्कर दोनों ही नगर अपनी धार्मिक विशेषताओं के चलते राजनीतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण बने रहे। अजमेर, दिल्ली सल्तनत और फिर मुग़ल साम्राज्य के अधीन एक प्रमुख सूबों में रहा, जबकि पुष्कर मेवाड़ और मारवाड़ राज्यों के बीच तीर्थराज के रूप में प्रतिष्ठित रहा। मुग़ल सम्राट अकबर (1542–1605) स्वयं कई बार ख्वाजा साहब की दरगाह पर पधारे और उन्होंने वहाँ चढ़ावा भी चढ़ाया। 1570 के दशक में अकबर की यात्राओं का विवरण 'अकबरनामा' में मिलता है, जहाँ यह भी उल्लेख है कि उन्होंने अजमेर से सांस्कृतिक सहिष्णुता की नीति अपनाई। इसी प्रकार, राजपूत नरेशों ने पुष्कर की धार्मिक प्रतिष्ठा को संरक्षण दिया और वहाँ के घाटों, मंदिरों तथा सरोवर के पुनर्निर्माण में योगदान दिया।

राजनीतिक संरचनाओं का धार्मिक स्थलों पर प्रभाव केवल संरक्षण तक सीमित नहीं था, बल्कि धार्मिक सह-अस्तित्व के विचार को राजनीतिक नीतियों में भी शामिल किया गया। उदाहरण के लिए, जहाँ अजमेर में हिन्दू सेवकों की दरगाह में सक्रिय भागीदारी दिखती है, वहीं पुष्कर के मेलों में मुस्लिम व्यापारियों, कलाकारों और

कथावाचकों की उपस्थिति एक परंपरा रही है। यह परस्पर सहभागिता, प्रशासनिक और सांस्कृतिक संरक्षण के माध्यम से संभव हुई, जो मध्यकालीन सत्ता की धार्मिक नीति को एक बहुलतावादी दृष्टिकोण प्रदान करती है। इस प्रकार, अजमेर और पुष्कर के ऐतिहासिक अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि ये नगर धार्मिक स्थलों से कहीं अधिक हैं — ये ऐसे जीवित स्थल हैं जहाँ धार्मिक परंपराएँ, सत्ता की नीतियाँ और जनसांस्कृतिक संवाद, सह-अस्तित्व की विरासत को निरंतर विकसित करते रहे हैं।

धार्मिक सह-अस्तित्व के ऐतिहासिक उदाहरण

अजमेर की दरगाह शरीफ़ और पुष्कर का ब्रह्मा मंदिर भारत की विविध धार्मिक चेतनाओं के केंद्र हैं, परंतु इन दोनों स्थलों की विशेषता केवल धार्मिक महत्त्व में नहीं, बल्कि उनके इर्द-गिर्द विकसित हुई साझा सांस्कृतिक जीवन-शैली और बहुधार्मिक सहभागिता में निहित है। ये स्थल इस बात के ऐतिहासिक उदाहरण हैं कि किस प्रकार भारत में धार्मिक विविधता केवल सह-अस्तित्व तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने पारस्परिक संवाद, आदान-प्रदान और सहानुभूति का रूप भी ग्रहण किया है।

दरगाह शरीफ़, जहाँ ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की मज़ार स्थित है, न केवल मुस्लिम समुदाय के लिए श्रद्धा का केंद्र है, बल्कि यहाँ हिंदू श्रद्धालुओं की भी पीढ़ियों से सहभागिता रही है। हर वर्ष आयोजित होने वाला *उर्स महोत्सव*, जो ख्वाजा साहब के देहावसान की स्मृति में मनाया जाता है, एक धर्मनिरपेक्ष तीर्थ यात्रा में परिवर्तित हो चुका है। वर्ष 2023 में आयोजित उर्स में शामिल होने वाले 18 लाख से अधिक तीर्थयात्रियों में बड़ी संख्या हिन्दू समुदाय से थी, जिन्होंने 'चादर' चढ़ाकर आस्था प्रकट की। यहाँ भिखारी ठाकुर, कबीर और मीरा जैसे संतों की परंपरा से प्रभावित लोक कव्वालियाँ गाई जाती हैं, जिनमें भक्ति और सूफी भावनाएँ मिश्रित रूप में दृष्टिगोचर होती हैं।

वहीं दूसरी ओर, पुष्कर का कार्तिक पूर्णिमा मेला धार्मिक सीमाओं को लांघती लोक आस्था का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह मेला, जो ब्रह्मा सरोवर के किनारे आयोजित होता है, न केवल हिन्दू श्रद्धालुओं का एक प्रमुख तीर्थ आयोजन है, बल्कि यह विभिन्न समुदायों के मेल-जोल और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का भी सजीव मंच बन चुका है। मुस्लिम बुनकर, पशु व्यापारी, हस्तशिल्पकार, लोकगायक और कथावाचक इस आयोजन का अभिन्न हिस्सा बनते हैं। यहाँ सांस्कृतिक प्रदर्शन जैसे कठपुतली नृत्य, लोक गायन, झाँकियाँ और शिल्प हाट एक बहु-सांस्कृतिक संवाद को जन्म देते हैं।

इन दोनों स्थलों के आसपास के सामाजिक व्यवहार में भी यह बहुलता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उदाहरणस्वरूप, दरगाह के निकट स्थित हिन्दू व्यापारियों की दुकानों पर "या मोइनुद्दीन" के साथ "जय श्रीराम" लिखा होना आम बात है। वहीं पुष्कर में मुस्लिम कारीगरों द्वारा बनाए गए पूजा पात्र और सजावटी वस्तुएँ, श्रद्धालुओं द्वारा श्रद्धा से खरीदी जाती हैं। यह व्यवहार न केवल धार्मिक सहिष्णुता को दर्शाता है, बल्कि गहरी सामाजिक-आर्थिक अंतर-निर्भरता का भी सूचक है।

इतिहास में कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं जहाँ इन स्थलों को शाही संरक्षण प्राप्त हुआ, परंतु यह संरक्षण विशुद्ध धार्मिक नहीं, बल्कि एक समावेशी संस्कृति को सशक्त करने की नीति का भाग था। अकबर ने न केवल दरगाह शरीफ़ पर 'सिंदूर की चादर' चढ़ाई, बल्कि ब्रह्मा मंदिर के लिए राजस्व से अनुदान भी प्रदान किया। पुष्कर के कई घाटों और मंदिरों का पुनर्निर्माण मारवाड़ के मुस्लिम नवाबों के काल में भी हुआ, जहाँ स्थानीय हिन्दू-पुजारियों और मुस्लिम कारीगरों का सहयोग दिखाई देता है।

इतिहास की इन घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि धार्मिक सह-अस्तित्व किसी एकतरफा सहनशीलता का परिणाम नहीं था, बल्कि यह जनता के बीच विकसित हुए *जन-आधारित सहिष्णुता* के भाव से प्रेरित था। यह सह-अस्तित्व आस्थाओं के मध्य संवाद, श्रम और श्रद्धा के साझे प्रयासों से निर्मित हुआ, जिसने न केवल धार्मिक स्थलों को जीवंत बनाए रखा, बल्कि उन्हें सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक एकता के केन्द्रों में भी रूपांतरित किया। आज, जब धार्मिक टकरावों की घटनाएँ वैश्विक स्तर पर उभर रही हैं, अजमेर और पुष्कर के ये ऐतिहासिक उदाहरण भारत की गंगा-जमुनी तहज़ीब को समझने और संरक्षित करने के लिए प्रेरक आधार प्रस्तुत करते हैं।

लोक संस्कृति और धार्मिक संवाद

अजमेर और पुष्कर जैसे धार्मिक स्थलों की विशेषता केवल उनकी आध्यात्मिक गरिमा में नहीं, बल्कि वहाँ से पनपने वाली जीवंत लोक संस्कृति में है, जो विभिन्न धर्मों, जातियों और समुदायों के बीच *सांस्कृतिक संवाद* का सशक्त माध्यम बनती है। यहाँ सूफी कव्वालियाँ, हिन्दू भजन, लोक कथाएँ और तीर्थ यात्राओं की परंपराएँ इस प्रकार परस्पर गुँथी हुई हैं कि वे किसी भी एकल धार्मिक पहचान से परे जाकर समावेशी लोकधर्मी चेतना को अभिव्यक्त करती हैं।

कव्वाली जैसी सूफी गायन परंपरा, जो मुख्यतः इस्लामी आध्यात्मिकता से जुड़ी है, उसे अजमेर की दरगाह में हिन्दू और मुस्लिम दोनों गायकों द्वारा प्रस्तुत किया जाना केवल धार्मिक सहिष्णुता का नहीं, बल्कि साझी सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। उर्स के अवसर पर प्रस्तुत होने वाली कव्वालियों में अक्सर कबीर, मीरा और तुलसी जैसे संत कवियों की वाणी शामिल होती है, जो सूफी और भक्ति परंपरा के बीच संवाद को रेखांकित करती है। यही स्थिति भजनों और लोक गीतों की है, जो पुष्कर में गाए जाते हैं। इन गीतों में अनेक बार सूफी शब्दावली या ख्वाजा के प्रति सम्मान देखने को मिलता है। एक उदाहरण में पुष्कर की महिलाएँ 'ग़रीब नवाज़ की चादर' के गीत गाती हैं, जो एक अद्वितीय सामूहिक श्रद्धा का परिचायक है।

लोककथाएँ भी इस संवाद का अभिन्न हिस्सा हैं। अजमेर क्षेत्र में प्रचलित कथाओं में ख्वाजा साहब को चमत्कारी संत के रूप में वर्णित किया गया है, जो हिन्दू देवी-देवताओं की तरह चमत्कार करते हैं और भक्तों की पीड़ा हरते हैं। वहीं, पुष्कर क्षेत्र की कथाओं में सूफी संतों को 'धरती के फकीर' के रूप में सम्मानित किया जाता है। इस प्रकार की कहानियाँ पीढ़ियों से मौखिक परंपरा के ज़रिए संप्रेषित होती रही हैं, जो धर्मों के बीच की विभाजन रेखाओं को मिटाकर *सांस्कृतिक साझेदारी* को आगे बढ़ाती हैं।

उर्स और कार्तिक मेला जैसे आयोजनों में यह साझेदारी दृश्य रूप में दिखाई देती है, जब हिन्दू-मुस्लिम कलाकार मिलकर मंच साझा करते हैं। उर्स के दौरान आयोजित कव्वाली कार्यक्रमों में हिन्दू तबलची, हारमोनियम वादक और सूफी गायकों की मिश्रित टोली होती है, जबकि पुष्कर मेले में लोक नाटक, कठपुतली और भजन संध्या में मुस्लिम कलाकारों की सक्रिय भागीदारी देखी जाती है। यह केवल प्रदर्शन नहीं, बल्कि *संवाद की जीवंत प्रक्रिया* है, जो एक-दूसरे की परंपराओं को आत्मसात करने का अवसर देती है।

भाषा और प्रतीकों में भी इस साझी संस्कृति की झलक मिलती है। दरगाह शरीफ़ में "जय ख्वाजा" और "राम-राम" एक साथ गूंजते हैं। वहीं पुष्कर के घाटों पर मिलने वाले पूजा-सामग्री के थैलों पर "ॐ" और "या अली" साथ छपे मिलते हैं। लोक भाषा—राजस्थानी और ब्रज मिश्रित शैली में—प्रयोग होने वाले शब्द जैसे 'पीर', 'परब्रह्म', 'फकीर', 'घाट', 'मज़ार', 'धूनी'—सांस्कृतिक आत्मीयता को दर्शाते हैं। यहाँ तक कि विवाह और जन्म जैसे संस्कारों में भी अनेक रीति-रिवाज़ ऐसे हैं जो दोनों समुदायों में समान रूप से प्रचलित हैं, जैसे कि बच्चों के कान में 'अज़ान' कहने या नामकरण के साथ 'शुभ मुहूर्त' देखना।

इस प्रकार लोक संस्कृति केवल मनोरंजन या परंपरा के निर्वाह का माध्यम नहीं है, बल्कि वह धर्मों के मध्य सेतु का कार्य करती है। वह धार्मिक संवाद को सैद्धांतिक विमर्श से निकालकर *जीवन-व्यवहार* में स्थापित करती है। अजमेर और पुष्कर की सांस्कृतिक भूमि इस बात की साक्षी है कि कैसे लोक धर्म ने औपचारिक धर्मों के बीच की दूरी को कम किया है और एक साझा, समावेशी भारतीयता को जन्म दिया है, जो आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक हो गई है।

औपनिवेशिक और स्वतंत्र भारत में सह-अस्तित्व की स्थिति

अजमेर और पुष्कर जैसे बहुधार्मिक नगरों में सह-अस्तित्व की परंपरा समय के साथ विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होती रही है। विशेषकर औपनिवेशिक शासन के दौरान और स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत, इन धार्मिक स्थलों और उनके चारों ओर निर्मित सांस्कृतिक ताने-बाने ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे। बावजूद इसके, इन नगरों की ऐतिहासिक संरचना और जनता के बीच व्याप्त परस्पर सम्मान की भावना ने सह-अस्तित्व को सतत बनाए रखने में निर्णायक भूमिका निभाई।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन (1765–1947) में धार्मिक नीतियों को अधिकतर "**विभाजन और नियंत्रण**" (divide and rule) की रणनीति के अंतर्गत देखा जाता है। प्रशासनिक दृष्टि से अंग्रेजों ने धार्मिक स्थलों में हस्तक्षेप करने से परहेज का दावा किया, लेकिन वास्तविकता यह थी कि उन्होंने धार्मिक समूहों के बीच अविश्वास की खाई को गहराने दिया। अजमेर, जो 1818 में ब्रिटिश अधीनता में गया, एक प्रशासनिक केंद्र के रूप में विकसित हुआ और यहां की बहुलतावादी धार्मिक संरचना को कभी सीधे नहीं, परंतु अप्रत्यक्ष रूप से चुनौती दी गई। ब्रिटिश अधिकारियों ने दरगाह की आय पर नियंत्रण रखते हुए *खादिमों* और *अंजुमनों* के बीच टकराव को संस्थागत रूप दिया। वहीं पुष्कर में मंदिरों की गतिविधियों को स्थानीय शाही संरक्षकता से अलग कर, उन्हें ज़मींदारों और पुजारियों के माध्यम से नियंत्रित किया जाने लगा।

फिर भी, जनता के स्तर पर *सांस्कृतिक सह-अस्तित्व* की परंपरा निर्बाध रूप से चलती रही। ब्रिटिश काल में उर्स और कार्तिक मेले को प्रशासनिक निगरानी में अनुमति दी जाती थी, लेकिन इन आयोजनों में हिंदू-मुस्लिम जनता की सम्मिलित भागीदारी और लोक कलाओं की साझा प्रस्तुति ने अंग्रेजी शासन की सांप्रदायिक नीति को चुनौती दी। लोक साहित्य, गाथाओं और गीतों के माध्यम से यह भावना संप्रेषित होती रही कि धार्मिक भिन्नता, विभाजन का नहीं बल्कि संवाद का कारण है।

स्वतंत्र भारत के गठन के बाद, विशेषकर 1947 के विभाजन के साथ उत्पन्न हुए सांप्रदायिक तनावों का प्रभाव अजमेर और पुष्कर पर भी पड़ा, किंतु यह प्रभाव बहुत सीमित और अस्थायी रहा। 1948 में अजमेर में कुछ दिनों के लिए सांप्रदायिक तनाव अवश्य उत्पन्न हुआ, परंतु ख्वाजा साहब की दरगाह और स्थानीय समाज के साझा प्रयासों से स्थिति को शीघ्र सामान्य किया गया। पुष्कर, जिसकी पहचान तीर्थराज के रूप में है, उस समय भी एक खुला और समावेशी स्थल बना रहा, जहाँ स्थानीय मुस्लिम समाज कार्तिक मेले के आयोजन में सहायक बना रहा।

राष्ट्रीय एकता के निर्माण में अजमेर और पुष्कर की भूमिका प्रतीकात्मक होने के साथ-साथ व्यावहारिक भी रही है। यहाँ के धार्मिक उत्सवों को राज्य सरकारों द्वारा 'सांस्कृतिक विरासत' के रूप में मान्यता दी गई है। उर्स को राष्ट्रीय एकता सप्ताह के अवसर पर आयोजित किया जाता है, जिसमें देशभर से विभिन्न धर्मों के लोग भाग लेते हैं। 2023 में प्रधानमंत्री कार्यालय के विशेष प्रतिनिधियों ने उर्स में 'राष्ट्रीय एकता की चादर' चढ़ाई, जो धार्मिक सद्भाव का राष्ट्रीय संदेश बन गया। इसी प्रकार पुष्कर मेले को "स्पिरिचुअल हेरिटेज फेस्टिवल" के रूप में अंतरराष्ट्रीय मंच पर प्रस्तुत किया गया है।

आज जब भारत अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक चुनौतियों से गुजर रहा है, तब अजमेर और पुष्कर की साझा विरासत यह दर्शाती है कि *स्थानीय धार्मिक स्थल केवल पूजा या आराधना के केंद्र नहीं होते,* बल्कि वे सामाजिक समरसता, ऐतिहासिक संवाद और राष्ट्रीय एकता की आधारशिला भी होते हैं। इन स्थलों की विविध धार्मिक पहचान और उनमें समाहित लोक संस्कृति हमें यह सिखाती है कि सह-अस्तित्व कोई आधुनिक विचार नहीं, बल्कि भारत की परंपरा और चेतना का मौलिक अंग रहा है—जिसे केवल सहेजने की नहीं, सक्रिय रूप से पुनः जीवंत करने की आवश्यकता है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य और चुनौतियाँ

वर्तमान समय में जब धार्मिक असहिष्णुता और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण की घटनाएँ विश्व भर में बढ़ रही हैं, भारत के जैसे बहुधार्मिक समाज में *धार्मिक सह-अस्तित्व* की परंपरा को न केवल समझने बल्कि संरक्षित करने की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ गई है। अजमेर और पुष्कर जैसे नगर, जो ऐतिहासिक रूप से धार्मिक सह-अस्तित्व और सांस्कृतिक समरसता के जीवंत प्रतीक रहे हैं, आज *वर्तमान धार्मिक राजनीति,* मीडिया के प्रोपेगैंडा और आर्थिक व सांस्कृतिक पुनर्गठन के दबावों के बीच एक नई स्थिति में खड़े हैं।

आज के धार्मिक राजनीतिक परिदृश्य में धर्म को एक चुनावी हथियार की तरह प्रयोग किया जाता है, जिसके कारण ऐतिहासिक साझा स्थल भी राजनीतिक विमर्श का हिस्सा बन जाते हैं। कभी-कभी दरगाह या मंदिर को लेकर भावनात्मक उन्माद फैलाने के प्रयास होते हैं, जिससे आपसी अविश्वास पनपता है। मीडिया, विशेषकर *सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स*, पर प्रसारित होने वाली अर्धसत्य खबरें और विघटनकारी आख्यान इस स्थिति को और भी संवेदनशील बना देते हैं। उदाहरणस्वरूप, 2022 में अजमेर के एक स्थानीय विवाद को साम्प्रदायिक रंग देने की कोशिश सोशल मीडिया के माध्यम से की गई, जिसे प्रशासन और स्थानीय समाज की सूझबूझ से विफल किया गया।

इसके बावजूद, इन क्षेत्रों में *पर्यटन, व्यापार और सांस्कृतिक उत्सवों* ने सह-अस्तित्व की संभावनाओं को नया आधार दिया है। अजमेर की दरगाह में सूफी संगीत महोत्सव तथा पुष्कर में 'स्पिरिचुअल आर्ट फेस्ट' जैसे आयोजन एक साझा सांस्कृतिक मंच प्रदान कर रहे हैं, जहाँ दोनों समुदायों के कलाकार, व्यवसायी और दर्शक समान रूप से भाग लेते हैं। पर्यटन उद्योग भी, जो इन स्थलों पर आधारित है, हिंदू-मुस्लिम सहभागिता की मिसाल बना है—जहाँ मुस्लिम गाइड, हिन्दू दुकानदार, और मिश्रित समुदायों के होटल व्यवसायी मिलकर एक साझा अर्थव्यवस्था का निर्माण करते हैं।

इन सबके बीच धार्मिक सह-अस्तित्व के संवर्धन में शिक्षा, संवाद और सांस्कृतिक प्रयासों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। वर्तमान शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में धार्मिक समावेशिता, सांस्कृतिक विविधता और भारतीय बहुलतावाद पर आधारित मूल्य आधारित शिक्षा का समावेश आवश्यक है। अजमेर और पुष्कर जैसे क्षेत्रों में *इंटरफेथ डायलॉग* (अंतरधार्मिक संवाद), स्थानीय इतिहास पर आधारित जन-संगोष्ठियाँ, और स्कूल स्तर पर सांस्कृतिक दौरे इस दिशा में प्रभावी पहल हो सकते हैं। 2023 में अजमेर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित *"धार्मिक सह-अस्तित्व और लोक परंपरा"* विषयक संगोष्ठी इस दिशा में एक सराहनीय उदाहरण रही, जिसमें छात्रों और शिक्षकों ने स्थानीय सांस्कृतिक विरासत को पुनर्परिभाषित किया।

इस प्रकार, समकालीन समय में धार्मिक सह-अस्तित्व को चुनौती तो मिल रही है, परंतु उसके नए आधार भी बन रहे हैं। आवश्यकता है कि *स्थानीय प्रयासों* को राष्ट्रीय स्तर पर प्रोत्साहन दिया जाए, और शिक्षा, मीडिया तथा सांस्कृतिक मंचों को एक *उत्तरदायी और समावेशी भूमिका* निभाने के लिए प्रेरित किया जाए। अजमेर और पुष्कर की साझी विरासत यह दिखाती है कि धार्मिक भिन्नता के बावजूद, सह-अस्तित्व एक आदर्श नहीं बल्कि व्यवहार्य और ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित वास्तविकता है—जिसे वर्तमान में अधिक संवेदनशीलता और प्रतिबद्धता के साथ जीवित रखना होगा।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अजमेर और पुष्कर का धार्मिक-सांस्कृतिक परिदृश्य इस शोध का केंद्र रहा है, जहाँ *हिंदू-मुस्लिम सह-अस्तित्व* केवल ऐतिहासिक तथ्य नहीं, बल्कि जीवंत लोक परंपराओं, सांस्कृतिक संवाद और सामाजिक व्यवहार के रूप में

आज भी उपस्थित है। इस अध्ययन के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि चाहे सूफी दरगाह हो या वेदों में वर्णित ब्रह्मा मंदिर—दोनों स्थलों पर विकसित हुई सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ धार्मिक सीमाओं को पार करके मानवीय मूल्यों और सहभागिता को केंद्र में लाती हैं।

प्रमुख निष्कर्षों में यह बात सामने आई कि औपनिवेशिक काल में भले ही धर्मों के बीच कृत्रिम दीवारें खड़ी करने के प्रयास हुए हों, फिर भी *जनपदीय लोक चेतना* ने साझेपन को जीवित रखा। स्वतंत्र भारत में भी, जब सांप्रदायिकता का खतरा मंडराया, तब भी अजमेर और पुष्कर की लोक संस्कृति—कव्वाली, भजन, तीर्थ यात्रा, मेला, लोककथाएँ और सांझे प्रतीक—ने परस्पर सम्मान और संवाद का मार्ग प्रशस्त किया।

आज के समय में जब धार्मिक असहिष्णुता का वातावरण गहराता जा रहा है, तब *अजमेर–पुष्कर मॉडल* को एक *रोल मॉडल* के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया जा सकता है। यह मॉडल दर्शाता है कि कैसे धार्मिक पर्यटन, लोक-संस्कृति, व्यापारिक सहभागिता और शिक्षा के माध्यम से सामाजिक समरसता को पुनः सशक्त किया जा सकता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि इन स्थलों पर होने वाले *इंटरफेथ डायलॉग्स,* सांस्कृतिक महोत्सव और साझा स्मृति-चिह्नों को शैक्षणिक और प्रशासनिक मान्यता मिले, जिससे यह मॉडल अन्य शहरों में भी लागू किया जा सके।

भविष्य के शोध हेतु कई संभावनाएँ स्पष्ट रूप से उभर कर आती हैं। विशेषकर, *महिलाओं की भूमिका*—जो तीर्थ-यात्राओं, लोक गायन, और धार्मिक अनुष्ठानों में अत्यंत सक्रिय होती हैं—अभी भी विमर्श से बाहर है। उनकी भागीदारी सह-अस्तित्व की संस्कृति को अधिक गहराई देती है, जिसे गंभीरता से विश्लेषित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, *युवा पीढ़ी की सहभागिता,* सोशल मीडिया के सकारात्मक उपयोग, और सांस्कृतिक विरासत को डिजिटल रूप में संरक्षित करने की रणनीतियाँ, शोध का नया क्षेत्र बन सकती हैं।

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि धार्मिक विविधता को संकट नहीं, *संभावना* के रूप में देखने की ज़रूरत है। अजमेर और पुष्कर हमें यह सिखाते हैं कि साझा आस्थाएँ, साझा प्रतीक और साझा परंपराएँ ही *एक भारत* की पहचान हैं—जहाँ बहुलता कोई बाधा नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता की सबसे बड़ी ताकत बन सकती है। इसलिए, इस दिशा में सतत शोध, नीति-निर्माण और शैक्षिक प्रयास अत्यंत आवश्यक हैं, ताकि भारत की इस साझा विरासत को भावी पीढ़ियाँ न केवल जानें, बल्कि गर्व से आत्मसात भी करें।

संदर्भ सूची

[1]. अंसारी, हकीम (2019)। *राजस्थान का सूफी इतिहास*। जयपुर: राजस्थान विश्वविद्यालय प्रकाशन।

[2]. चौधरी, रमेश (2021)। *पुष्कर: धार्मिक, सांस्कृतिक और लोक जीवन*। बीकानेर: लोक संस्कृत अकादमी।

[3]. जोशी, भावना (2018)। "अजमेर दरगाह में धार्मिक सहिष्णुता का लोक संदर्भ।" *भारतीय सामाजिक समीक्षा,* खंड 12(3), पृ. 45-56।

[4]. खान, नईमुद्दीन (2020)। *भारत में इस्लाम और सूफी परंपराएँ*। दिल्ली: मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी प्रकाशन।

[5]. मिश्रा, संजय (2022)। "हिंदू-मुस्लिम साझा विरासत और लोक संस्कृति: अजमेर और पुष्कर का केस स्टडी।" *लोक संस्कृति शोध पत्रिका*, अंक 9(2), पृ. 67-79।

[6]. राजस्थान पर्यटन विभाग (2023)। *अजमेर-पुष्कर पर्यटन सांस्कृतिक दस्तावेज*। जयपुर: राज्य पर्यटन मंत्रालय।

[7]. सैनी, अर्चना (2017)। "पुष्कर के तीर्थ मेलों में मुस्लिम भागीदारी: एक सामाजिक अध्ययन।" *राजस्थान लोकजीवन जर्नल*, खंड 6(1), पृ. 22-31।

[8]. शर्मा, सुनीता (2020)। *धार्मिक स्थान और सामाजिक समरसता*। वाराणसी: काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस।

[9]. अली, इमरान (2021)। " उर्स और सांप्रदायिक सद्भाव: एक तुलनात्मक विश्लेषण।" *समकालीन संस्कृति*, अंक 14(3), पृ. 88-96।

[10]. यूनेस्को (2018)। *भारत की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर में धार्मिक विविधता*। नई दिल्ली: यूनेस्को भारत कार्यालय।

[11]. भारत सरकार, संस्कृति मंत्रालय (2022)। *भारतीय धार्मिक सह-अस्तित्व पर रिपोर्ट*। नई दिल्ली: संस्कृति मंत्रालय प्रकाशन।

[12]. अजमेर विश्वविद्यालय (2023)। *धार्मिक सह-अस्तित्व और लोक परंपरा* विषयक संगोष्ठी की कार्यवाही रिपोर्ट। अजमेर: इतिहास विभाग, एमडीएस विश्वविद्यालय।